|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 17: श्रद्धात्रयविभागयोग

2/2 (श्लोक 9-28), रविवार, 04 मई 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ आशू जी गोयल

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/h0izaaEfBq0

सात्त्विक प्रवृत्ति का महत्त्व

सुमधुर एवम् आत्मशुद्धि करने वाले कर्ण प्रिय भगवत् भजनों के पश्चात् ईश्वर की असीम अनुकम्पा एवं गुरुदेव के आशीर्वाद से आज के विवेचन सत्र का शुभारम्भ भगवान् श्रीकृष्ण की प्रार्थना एवं दीप प्रज्वलन के साथ हुआ। श्रीभगवान् द्वारा श्रीमुख से उच्चारित श्रीमद्भगवद्गीता का यह विवेचन सत्र आज सत्रहवें अध्याय के उत्तरार्द्ध का है। इस सत्र के अन्तर्गत सत्रहवें अध्याय का सुन्दर विस्तारित विवेचन श्लोक सङ्ख्या नौ से प्रारम्भ होता है तथा इस अध्याय के अन्तिम श्लोक पर समाप्त होता है।

श्रीभगवान् की हम सभी पर अतिशय मङ्गलमय कृपा से हमारे यह सद्भाव जागृत हुए हैं कि आज हम स्वयं के जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में विजय प्राप्त करने हेतु तथा अपनी आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होते हुए श्रीमद्भगवद्गीता जी के अध्ययन में प्रवृत्त हुए हैं।
आप सभी यहाँ उपस्थित हैं अत: यह जानिए कि हमारे पुण्य कर्मों, पूर्वजों के आशीर्वाद या सन्तों की कृपा दृष्टि के फलस्वरूप श्रीभगवान् ने हमारा चयन स्वयं श्रीमद्भगवद्गीता जी की सेवा हेतु किया है अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता जी को हमने नहीं, अपितु गीता जी ने हमारा चयन किया है, उनके पठन हेतु, मन्त्र सदृश श्लोकों के अर्थ को समझने हेतु तथा उसे अपने जीवन में, आचरण में उतारने हेतु।

श्रीमद्भगवद्गीता जी का मात्र पठन-पाठन करने भर से हम कदापि जीवन का वह लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकते, जिस हेतु वर्तमान में हम समस्त गीता प्रेमी प्रयासरत हैं। जीवन में चमत्कारी परिवर्तन एवं विशुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति हेतु हम सभी को श्रीमद्भगवद्गीता जी को अपने जीवन में आत्मसात करते हुए उन्हें जीवन में आने वाली प्रत्येक परिस्थिति में एक मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करना होगा, अत: इस हेतु हम जब भी किसी सन्त से श्रीमद्भगवद्गीता जी के श्लोकों के प्रवचन का श्रवण करते हैं या किसी महापुरुष से उनका विवेचन आदि सुनते हैं। तब हमें उस प्रवचन में कहे गए किसी भी एक विषय का चयन कर उसे अपने जीवन में लाने हेतु प्रयास करना चाहिए एवं इस हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते हुए हम स्वयं के जीवन में निश्चित ही चमत्कारिक तथा अद्भुत परिवर्तनों का अनुभव करेंगे।

स्वामीजी द्वारा दिया गया गीता परिवार का सूत्र वाक्य भी यही है-

।।गीता पढ़ें, पढ़ाएं, जीवन में लाएँ।।

आज हम जिस अध्याय के उत्तरार्द्ध का चिन्तन करने जा रहे हैं, वह अपने आप में बहुत महत्त्वपूर्ण है । हमारे मन में प्रश्न उत्पन्न

हो सकता है कि-

श्रद्धा क्या है?

किसी जीव की चेतना में उत्पन्न विशेष स्वभाव जो प्रकृति में व्याप्त तीनों गुणों सत्, रज एवं तम से आच्छादित होता है, वह उस जीव की श्रद्धा का निर्माण करता है। मान लीजिए किसी ने पूछा कि श्याम वर्ण क्या है? तब हम उस व्यक्ति के समक्ष श्याम वर्ण को स्पष्ट करने हेतु कोई वस्तु लाते हैं जिस पर श्याम वर्ण आरोपित होता है। उसी प्रकार श्रद्धा भी जीव चेतना पर आरोपित होती है। जिसे हम उस जीव द्वारा किए जाने वाले व्यवहार से उचित प्रकार समझ सकते हैं।

किसी व्यक्ति का मन पूजा, जप, तप, ध्यान, गुरु सेवा, क्रीड़ा, चलचित्र, अन्य प्राणियों की सेवा, भोजन आदि जिस भी कार्य में लगता है अर्थात् वह व्यक्ति नित्य-प्रति अपने मन को जिस क्षेत्र में चिन्तन हेतु अग्रसर करता है, व्यक्ति उस स्वभाव को प्राप्त कर लेता है। जैसे बोलचाल की भाषा में अधिक चलचित्र का दृष्टा फ़िल्मबाज कहलाता है। जो व्यक्ति भजन आदि अधिक करता है, वह भक्त कहलाने लगता है। योग करने वाला व्यक्ति योगी कहलाता है। जिस व्यक्ति की जैसी श्रद्धा होती है, उसका प्रतिरूप भी वैसा ही निर्मित कर दिया जाता है।

जीव कदापि भोजन से विमुख नहीं रह सकता, चाहे वह किसी अन्य कार्य में सङ्लग्न हो या न हो,अत: श्रीभगवान् इस अध्याय में तीन प्रकार के भोजन के विषय में वर्णित करते हुए अर्जुन से कहते हैं कि-

सृष्टि में विद्यमान कोई भी पदार्थ न तो शुद्ध सात्त्विक है, न ही राजसिक तथा न ही पूर्णतः तामसिक। प्रत्येक पदार्थ प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा शासित है अर्थात् गुणों की मात्रा में भिन्नता के कारण कोई पदार्थ सात्त्विक प्रवृत्ति का, कोई राजसिक या तामसिक प्रवृत्ति का है।

जीव की आयु, समय एवं मात्रा में परिवर्तन सहित उसकी सात्त्विक प्रकृति राजसिक में तथा राजसिक प्रकृति तामसिक में परिवर्तित हो सकती है।

इस अध्याय के श्लोक आठ में श्रीभगवान् ने सात्त्विक भोजन का विस्तारित वर्णन करते हुए सात्त्विक भोजन के छ: लक्षण बताए हैं-
यह
1) आयु में वृद्धि करने वाला,
2) जीवन को शुद्ध करने वाला,
3) बल देने वाला,
4) स्वास्थ्य देने वाला,
5) सुख देने वाला,
6) तृप्ति देने वाला होता है।

सात्त्विक भोजन के विषय में वर्णित करते हुए श्रीभगवान् ने आहार ग्रहण करने के परिणामों को सर्वप्रथम स्पष्ट किया है। तत्पश्चात् उसके स्वरूप एवं स्वाद को।

17.9

कट्वम्ललवणात्युष्ण, तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः|
आहारा राजसस्येष्टा, दुःखशोकामयप्रदाः||17.9||

अति कड़वे, अति खट्टे, अति नमकीन, अति गरम, अति तीखे, अति रूखे और अति दाह कारक आहार अर्थात् भोजन के पदार्थ राजस मनुष्य को प्रिय होते हैं, (जो कि) दुःख, शोक और रोगों को देने वाले हैं।

विवेचन- चूँकि राजसी दृष्टि से स्वाद महत्त्वपूर्ण होता है अत: श्रीभगवान् ने प्रथम भोजन के स्वाद को तत्पश्चात् उसके परिणाम को वर्णित किया है।

अत्यधिक तिक्त, खट्टे, नमकीन, गरम, चटपटे, शुष्क तथा जलन उत्पन्न करने वाले भोजन रजोगुणी मनुष्यों को प्रिय होते हैं। ऐसे भोजन दुःख, शोक तथा रोग उत्पन्न करने वाले हैं।

आदतवश कुछ लोग बहुत अधिक गर्म चाय को पी अपनी जिह्वा, होंठों की त्वचा जला लेते हैं। कुछ लोग भोजन में अत्यधिक नमक का उपयोग करते हैं। जो आगे चल कर शारीरिक रोग का कारण बनता है। वर्तमान में बेकरी आदि में निर्मित खाद्य पदार्थों के सेवन में वृद्धि हुई है, जैसे पिज्जा, बर्गर आदि। रस रहित खाद्य पदार्थों का सेवन भविष्य में दुःख, चिन्ता एवं अवसाद तथा रोग का कारण बनता है। भोजन का यह स्वभाव राजसिक कहलाता है। राजसी प्रवृत्ति से युक्त जीव क्षुधा न होने पर भी स्वाद को महत्त्व देते हुए आवश्यकता से अधिक भोजन ग्रहण कर लेता है तथा यदि भोजन का स्वाद राजसी व्यक्ति के अनुकूल न हो तो क्षुधा होने पर भी कदापि भोजन ग्रहण नहीं करता।

सात्त्विक भोजन में परिणाम सर्वप्रथम आता है।
राजसिक भोजन में स्वाद प्रथम आता है।
तामसिक भोजन की प्रधानता में न तो स्वाद का ही महत्त्व है न ही
परिणाम का।

17.10

यातयामं(ङ्) गतरसं(म्), पूति पर्युषितं(ञ्) च यत्|
उच्छिष्टमपि चामेध्यं(म्), भोजनं(न्) तामसप्रियम्||17.10||

जो भोजन सड़ा हुआ, रस रहित, दुर्गन्धित, बासी और जूठा है तथा (जो) महान अपवित्र (मांस आदि) भी है, (वह) तामस मनुष्य को प्रिय होता है।

विवेचन- तामसिक भोजन, वर्तमान में डीप फ्रीजर किया गया वह भोजन है जो एक-दो दिन पूर्व निर्मित किया जाता है। कभी-कभी कुछ फल भी डीप फ्रीजर में रख दिए जाते हैं तथा उन्हें महीनों के अन्तराल बाद बिना उस फल के मौसम के आहार में ग्रहण किया जाता है, जैसे आम को ग्रीष्म ऋतु में डीप फ्रीजर में रख, शीत ऋतु में ग्रहण किया जाता है।

श्रीभगवान् तामसिक भोजन को वर्णित करते हुए कहते हैं कि भोजन ग्रहण करने से तीन घण्टे पूर्व पकाया गया, स्वादहीन, वियोजित एवं सड़ा, जूठा तथा अस्पृश्य वस्तुओं से युक्त भोजन उन लोगों को प्रिय होता है, जो तामसिक होते हैं।

हाथ से भोजन का टुकड़ा गिर जाने पर पुनः उसे अपने भोजन के पात्र में नहीं रखना चाहिये क्योंकि वह अब चींटियों तथा अन्य सूक्ष्म जीवों का भोजन है।

हमारे घरों में प्राचीन समय में यह प्रचलन था कि प्रथम रोटी गौ माता हेतु तथा अन्तिम रोटी श्वान हेतु निर्मित होती थी। माँस, अण्डा सहित अशुद्ध अवस्था में निर्मित भोजन, अस्वच्छ स्थान तथा बिना स्नान किए निर्मित भोजन, तामसिक श्रेणी में आता है। स्थूल, सूक्ष्म दृष्टि आदि को ध्यान में रखते हुए भोजन निर्मित करते हुए उसकी शुद्धता पूर्णतः सुनिश्चित होनी चाहिए।

17.11

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो, विधिदृष्टो य इज्यते|

यष्टव्यमेवेति मनः(स्), समाधाय स सात्त्विकः||17.11||

यज्ञ करना ही कर्तव्य है - इस तरह मन को समाधान (संतुष्ट) करके फलेच्छा रहित मनुष्यों द्वारा जो शास्त्रविधि से नियत यज्ञ किया जाता है, वह सात्त्विक है।

विवेचन- श्रीभगवान् इस श्लोक में यज्ञ के प्रकार का वर्णन कर रहे हैं, जो उनकी प्रकृति अनुसार तीन प्रकार के होते हैं-

सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक

अग्निहोत्र, हवन, मन्त्रोच्चारण करना मात्र ही यज्ञ नहीं है।

हम आसन लगाने एवं प्राणायाम करने को ही योग मान लेते हैं। जबकि सम्पूर्ण योग आसन एवं प्राणायाम सहित- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, कुल आठ सोपानों में अभिव्यक्त है। जिसे सम्पूर्णता सहित योग कहते हैं।

श्रीभगवान् ने श्रीमद्भगवद्गीता जी में बारह प्रकार के यज्ञों का वर्णन किया है। यज्ञ अनेक प्रकार के होते हैं।

वास्तविकता में जो भी कार्य कर्त्तव्य भावना से किया जाता है, वह यज्ञ हो जाता है। यज्ञों में वही यज्ञ सात्त्विक होता है, जिसे शास्त्रों के निर्देशानुसार कर्त्तव्य समझ कर उन लोगों के द्वारा किया जाता है, जो फल की इच्छा नहीं करते।

व्यक्तिगत (केवल मेरे लिए) भाव को त्याग कर जब कर्त्तव्य समष्टिगत (दूसरों हेतु) भाव से किया जाता है, तब जीवन यज्ञ बन जाता है। समस्त पशु जगत मात्र स्वयं हेतु ही विचार करते हैं जैसे भोजन, रक्षा, परिवार आदि ही उनके जीवन का उद्देश्य होता है।

इस परिप्रेक्ष्य में किसी कवि ने बहुत अच्छा लिखा है-

यो तो जीने को पशु भी पेट भरते हैं।
मगर जी ले जीवन दूसरों के लिए।
उसी का नाम जीवन है।।

विवेकशील मनुष्य जब व्यक्तिगत भाव को त्याग कर दूसरों के हित का विचार करते हुए, कर्त्तव्य परायणता सहित स्वयं का जीवन व्यतीत करता है, वही सच्चा मनुष्य है। दूसरे जीवों की सेवा करते हुए मैंने यह विचार त्याग दिया है कि प्रतिफल में मुझे किसी का धन्यवाद भी अपेक्षित है।

जब कोई व्यक्ति किसी की सहायता करता है तब प्रारम्भ में उसके मन में मात्र उस निसहाय जीव हेतु सेवा का भाव ही प्रबल होता है परन्तु जब कुछ लोग यह कहते हैं कि मैंने निःस्वार्थ भाव से उसकी सहायता की परन्तु उसने एक बार भी मेरे विषय में विचार नहीं किया। आपका यह विचार सर्वथा अनुचित है क्योंकि जब आप किसी की सेवा करते हैं तब मन में इस सेवा के प्रतिफल में मुझे क्या प्राप्त होगा? यह विचार आते ही वह सेवा भाव कलुषित हो जाता है।

"There is no deal that you will get in return."

आप अच्छे हैं तथा स्वयं की उसी अच्छाई की यह क्रिया है कि आप दूसरों के सेवार्थ उपलब्ध हैं। मात्र यह विचार ध्यान में रखते हुए प्राणिमात्र की सेवा करें। अन्यथा न ही आपके उस कलुषित विचार में सात्त्विक भाव होगा, न ही वह यज्ञ होगा।

माता-पिता को प्रणाम करना, इस उद्देश्य से नहीं कि वे प्रसन्न होंगे तथा आशीर्वाद देंगे। मात्र आपके मन में उनके प्रति अपने कर्त्तव्य का बोध आवश्यक है।

शास्त्रों में दो शब्दों का उल्लेख आता है-

प्रेय अर्थात् मन को भाने वाला।
श्रेय अर्थात् मुझे यह करना चाहिए।

ये दोनों ही शब्द स्पष्ट करते हैं कि हमारे विवेक एवं बुद्धि किस दिशा में कार्य करते हैं? हमारा आचरण क्या है?

17.12

अभिसन्धाय तु फलं(न्), दम्भार्थमपि चैव यत्|
इज्यते भरतश्रेष्ठ, तं(म्) यज्ञं(म्) विद्धि राजसम्||17.12||

परन्तु हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन ! जो यज्ञ फल की इच्छा को लेकर अथवा दम्भ (दिखावटीपन) के लिये भी (किया जाता है), उस यज्ञ को (तुम) राजस समझो।

विवेचन- सतोगुणी एवं रजोगुणी में क्या अन्तर है? इसे कर्त्तव्य दृष्टि एवं फलदृष्टि से समझा जा सकता है।

मुझे करना चाहिए, अत: मैं करूँगा। यह कर्त्तव्य भाव है। मुझे यह कर्म अच्छा फलीभूत होग, अत: मुझे करना चाहिए। यह भाव फल दृष्टि को दर्शाता है।

ट्रैफिक पुलिस वाले की उपस्थिति में, लाल बत्ती पर हमारा रुक जाना तथा उसकी अनुपस्थिति में हमारा लाल बत्ती होते हुए भी निकल जाना हमारी रजोगुणी प्रवृत्ति का द्योतक है। यह कदापि कर्त्तव्य भाव नहीं है।

हम प्रतिदिन पाँच मिनिट की पूजा करते हैं परन्तु घर पर किसी अतिथि के आ जाने पर पूजा के समय में वृद्धि कर उसे आधे घण्टे का कर देना दम्भ के अतिरिक्त कुछ अन्य नहीं है।

कुछ लोग सतोगुणी होने का दम्भ भरते हैं अर्थात् दिखावा करते हैं। हमारे गीता परिवार में ही ले लीजिए। बारह हजार गीता सेवी निःस्वार्थ भाव से अपनी सेवाएँ देते हैं, परन्तु यहाँ भी कभी-कभी कुछ ऐसे लोग सम्मिलित हो जाते हैं, जो मात्र स्वयं के नाम को किसी संस्थान विशेष से जोड़, उसे प्रचारित करते हैं। इस प्रकार वे अपने दम्भ की पूर्ति करते हैं।

जब कर्म किसी एक व्यक्ति के कार्य को नष्ट करने हेतु किये जाते हैं तब वे तमोगुणी यज्ञ बन जाते हैं।

दिखावा करने वाले व्यक्ति रजोगुणी होते हैं, जो स्वयं द्वारा खीञ्ची गई रेखा को दूसरों की रेखा से बड़ी होने का दिखावा करते हैं।

दूसरों के कार्य को बिगाड़ने वाले अपनी रेखा निर्मित करने में विश्वास न रखते हुए, दूसरों द्वारा निर्मित रेखा को नष्ट करने में विश्वास रखते हैं।

श्रीभगवान् कहते हैं कि हे भारतश्रेष्ठ! जिस यज्ञ को किसी भौतिक लाभ हेतु या गर्ववश किया जाता है, उसे तुम राजसी जानो।

17.13

विधिहीनमसृष्टान्नं(म्), मन्त्रहीनमदक्षिणम्|

श्रद्धाविरहितं(म्) यज्ञं(न्), तामसं(म्) परिचक्षते||17.13||

शास्त्र विधि से हीन, अन्न-दान से रहित, बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के (और) बिना श्रद्धा के किये जाने वाले यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

विवेचन- नवरात्र एवं गणेश चतुर्थी पर लग रहे पण्डाल, जिनमें से कुछ तो सात्त्विक दृष्टि से स्थापित किए जाते हैं परन्तु अधिकांशतः पण्डाल अपनी दम्भ पूर्ति हेतु, जहाँ न तो मन्त्रोच्चारण होता है, न ही पण्डित। (वैदिक अनुष्ठानों को करने हेतु) फिल्मी गीतों से सराबोर सम्पूर्ण वातावरण, जहाँ देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के समक्ष, उनके आयोजकों के चित्र अधिक बड़े होते हैं। यह दृश्य व्यक्ति के दम्भाचरण की पुष्टि करता है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि जो यज्ञ शास्त्र के निर्देशों की अवहेलना करके, प्रसाद वितरण किये बिना, वैदिक मन्त्रों का उच्चारण किये बिना, पुरोहितों को दक्षिणा दिए बिना तथा श्रद्धा के बिना सम्पन्न किया जाता है, वह तामसिक माना जाता है।

मदिरापान कर माता के भजन गाना कौन सा आचरण हैं? ऐसे ही तमोगुणी यज्ञ होते हैं, जो दूसरों को नष्ट करने या उन्हें हानि पहुँचाने हेतु आयोजित किए जाते हैं। जैसे द्रुपद द्वारा द्रोणाचार्य की मृत्यु की आशा में पुत्र की प्राप्ति हेतु किया गया पुत्रकामेष्टि यज्ञ तमोगुणी यज्ञ का उदाहरण हैं, जिसका सम्पूर्ण वृत्तान्त इस प्रकार है-

बाल्यकाल में द्रुपद एवं द्रोणाचार्य घनिष्ठ मित्र थे। गुरुकुल से शिक्षा प्राप्ति के पश्चात युवावस्था में दोनों अपने-अपने मार्ग पर चले तथा द्रुपद पाञ्चाल नरेश बने तथा द्रोणाचार्य गुरु बृहस्पति से दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर आचार्य बन गए। कृपाचार्य की बहन कृपि से विवाह के पश्चात अश्वत्थामा नामक पुत्र रत्न की उन्हें प्राप्ति हुई। द्रोणाचार्य की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उन्होंने अपनी पत्नी सहित एक निर्णय लिया कि वे राजा द्रुपद से मिलने जाएँगे। चूँकि वह उनके बचपन का मित्र है अत: उसे अपनी व्यथा सुना कर उससे कुछ सहायता प्रदान करने का अनुरोध करेंगे। वहाँ पहुँच जब द्रोणाचार्य द्रुपद से मिलते हैं तब द्रुपद अपनी बाल्यावस्था की मित्रता की अनदेखी करते हुए उन्हें अपमानित कर अपने राज्य से निष्कासित कर देता है।

द्रोणाचार्य अपने अपमान का प्रतिशोध द्रुपद से लेने का प्रण करते हुए हस्तिनापुर राज्य पहुँचते हैं। जहाँ पाण्डवों एवं कौरवों, जो कि उस समय बालक थे, को भीष्म पितामह के आग्रह पर शिक्षा देना प्रारम्भ करते हैं। वहाँ अर्जुन उनके प्रिय शिष्य बन जाते हैं। बालकों की शिक्षा समाप्त होने पर, मन में द्रुपद से प्रतिशोध का भाव लिए आचार्य अपने शिष्यों से गुरुदक्षिणा रूप, युद्ध में द्रुपद को पराजित करने का आदेश देते हैं। द्रुपद से युद्ध में दुर्योधन के परास्त होने के पश्चात् अर्जुन द्रुपद का द्वन्द्व युद्ध हेतु आवाह्न करते हैं। अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने हेतु राजा द्रुपद युद्ध हेतु प्रस्तुत हो जाते हैं जहाँ वे अर्जुन के युद्ध कौशल पर मोहित हो, यह इच्छा करते हैं कि काश मेरे कोई पुत्री होती तब मैं निश्चित ही उसका विवाह इस वीर योद्धा से करता।

अर्जुन से परास्त हो द्रुपद समस्त पाण्डवों सहित आचार्य के समक्ष आ स्वयं को बन्धनों से मुक्त करने का अनुरोध करते हैं तब द्रोणाचार्य द्रुपद का आधा राज्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को सौंप देते हैं।

अपनी पराजय से क्रोधित द्रुपद पुत्र प्राप्ति हेतु पुत्रकामेष्टि यज्ञ, स्वयं के पुरोहित के अनुज उपयाज से करवाते हैं। जहाँ अग्निदेव स्वयं प्रकट हो उन्हें सौन्दर्यवान कन्या पुत्री रूप में तथा एक तेजस्वी पुत्र भी प्रदान करते हैं। पुत्री का नाम यज्ञसैनी (द्रौपदी) तथा पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ।

महाभारत युद्ध में द्रुपद के इसी पुत्र ने आचार्य द्रोण का वध किया।
चूँकि यह यज्ञ राजा द्रुपद द्वारा द्रोणाचार्य के नाश हेतु किया गया, यद्यपि यह यज्ञ मन्त्रों से पूर्ण, वैदिक विधि-विधान से किया गया तथा यज्ञ पश्चात ब्राह्मण को दक्षिणा भी प्रदान की गई परन्तु इस यज्ञ का उद्देश्य सर्वथा अनुचित एवं कष्टकारी था अत: यह यज्ञ तमोगुणी श्रेणी में आयेगा।

इसी प्रकार रावण या हिरण्यकश्यप द्वारा किए गए यज्ञ भी, चूँकि मानवता को क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से किये गए, अत: तमोगुणी श्रेणी में आए।

17.14

देवद्विजगुरुप्राज्ञ, पूजनं(म्) शौचमार्जवम्|
ब्रह्मचर्यमहिंसा च, शारीरं(न्) तप उच्यते||17.14||

देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुष का यथायोग्य पूजन करना, शुद्धि रखना, सरलता, ब्रह्मचर्य का पालन करना और हिंसा न करना - (यह) शरीर-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् ने तीन प्रकार के तप बताए -
1. शारीरिक,
2. मानसिक,
3. वाचिक,
इनके भी तीन प्रकार होते हैं - सात्त्विक, राजसिक और तामसिक

इस श्लोक में श्रीभगवान् ने कहा है कि परमेश्वर, ब्राह्मणों, गुरु, माता-पिता जैसे गुरुजनों की पूजा करना तथा पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य एवं अहिंसा ही शारीरिक तपस्या है।

आदिशङ्क्राचार्य महाराज ने गृहस्थों हेतु चार विग्रह पूजा सहित सूर्य देव की निरन्तर अर्चना का विधान बताया है। आदि शङ्कराचार्य भगवान् ने पञ्चायतन देवता का विधान गृहस्थ के लिए किया है।

1. भगवान् सूर्य की आराधना - सूर्यदेव को अर्घ्य देना
2. भगवान् शिव का स्वरूप - शिवलिंग या भगवान् शिवजी के किसी स्वरूप की पूजा करना
3. भगवान् विष्णु का स्वरूप - भगवान् श्रीविष्णु, भगवान् श्रीराम या भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करना
4. माता गौरी का स्वरूप - देवी के गौरी, दुर्गा या लक्ष्मी स्वरूप की पूजा करना
5. भगवान् गणेश जी का स्वरूप - गणेश जी की पूजा करना
इनमें से जो आपके इष्ट देव हों उन्हें मध्य में स्थापित कर अन्य समस्त को उनके चारों ओर विराजमान करें।

ब्राह्मण-

ब्राह्मण का पूजन करना चाहिए, परन्तु ब्राह्मण कौन है?

1. जो मात्र जन्म से ही ब्राह्मण हो, उसे ब्राह्मण नहीं मानना चाहिए। नाम के आगे शर्मा जी लगे होने से व्यक्ति ब्राह्मण नहीं हो जाता।

तब ब्राह्मण को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है-
2. यज्ञोपवीत धारण करने वाला हो।
3. वेद पाठ करने वाला हो।
4. अग्निहोत्र करने वाला हो।
5. शास्त्रों का स्वाध्याय करने वाला हो।
ऐसे ब्राह्मणों का पूजन अवश्य करना चाहिए।

गुरु- गुरु कौन हैं?
घर में हवन, पूजन आदि कराने वाले व्यक्ति को हम गुरु नहीं कह सकते।
विद्यालयों में शिक्षा प्रदान करने वाले शिक्षक गुरु कहे जा सकते हैं परन्तु जब विषय आता है सद्गुरु का तब हम विद्यालय में शिक्षा प्रदान करने वाले अध्यापकों को भी सद्गुरु नहीं कहेंगे। एक महिला अपने सङ्गीत के गुरु को अपना सद्गुरु मानती थी।

परन्तु यह सर्वथा अनुचित है।

प्रश्न- सद्गुरु कौन हैं?
जिन्हें ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त है, वे ही सच्चे सद्गुरु हैं। जिन्होंने ईश्वरीय अनुभूति कदापि प्राप्त न की हो, वह कैसे सद्गुरु हो सकते हैं?

कुछ भक्त अपने सद्गुरु के प्रवचनों के श्रवण हेतु जाना ही उचित समझते हैं। यह उनका अविवेक है। ज्ञान जहाँ से अर्जित किया जा सके, हमें अवश्य ही करना चाहिए अन्यथा हम कूप के मेण्ढक बने रह जाते हैं।

प्राज्ञ- जिसकी प्रज्ञा जागृत हो गई हो। शास्त्रों का ज्ञाता, उस महापुरुष को प्रणाम करना चाहिए।

शौच- पवित्रता। बाह्य एवं आन्तरिक रूप से शुद्ध रहने का प्रयास करें। वर्तमान समय में कुछ लोग सैनिटाइज़र का उपयोग भोजन से पूर्व अपने हाथों के प्रच्छालन हेतु करते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। शुद्ध जल की धारा में हस्त-प्रच्छालन को शास्त्रों में श्रेष्ठ बताया गया है। रसोई बनाते हुए भी पवित्रता का ध्यान होना आवश्यक है। मैं कहाँ बैठ रहा हूँ? भोजन में क्या ग्रहण कर रहा हूँ? आदि की पवित्रता का बोध हमें होना चाहिए।

आर्जवम्- मैं जैसा हूँ, वैसा दिखूँ। जीवन में सादगी एवं सरलता होनी चाहिए। हम अनुचित व्यवहार कब करते हैं? हम जितने धनी होते हैं, उससे अधिक धनी दिखने का प्रयास करते हैं। जितने धार्मिक होते हैं, उससे अधिक धार्मिक दिखने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार हमारी सरलता का नाश हो जाता है तथा हम दम्भाचरण से युक्त हो जाते हैं।

ब्रह्मचर्य- अपनी प्रत्येक इन्द्रिय को वश में करना अर्थात् संयमित रहने का प्रयत्न करना।

अहिंसा- हिंसा न करना। यह भी शारीरिक तप का ही एक विशिष्ट प्रकार है। जीवों को मारकर भोजन रूप में ग्रहण नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का भी कष्ट न होने देना भी अहिंसा ही है। इस सन्दर्भ में एक ऐसे महापुरुष हैं जिनका चिन्तन बेहद सूक्ष्म है।

बात बीकानेर की है, प्रसङ्ग को भी लम्बा समय बीत चुका है। एक व्यापारी (जो विवेचक जी के परिचित भी थे) अपने प्रतिष्ठान में बैठे हुए भोजन का समय होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। भोजन का समय होता है, वे अपनी गद्दी से उठते हैं एवम् घर जाने हेतु प्रस्थान करते हैं। उनके अधीनस्थ कर्मचारी कुछ ही समय पश्चात् उन्हें पुनः आकर गद्दी पर बैठते हुए देखते हैं, जब ऐसा दो, तीन बार हो जाता है तब उनसे एक कर्मचारी पूछता है कि आप घर क्यों नहीं जा रहे? बार-बार वापस आ जाते हो, क्या कारण है? तब सभी उनके द्वारा बताया गया कारण सुन अचम्भित हो जाते हैं। वे कहते है कि मेरे वाहन के नीचे एक पिल्ला बड़े ही आराम से सो रहा है, मैं अपने वाहन को हिलाकर उसकी गहरी नींद को अवरोधित नहीं करना चाहता, अत: मैं निरन्तर जा कर यही देखता हूँ कि यदि वह उठ गया हो तो मैं घर जा भोजन ग्रहण कर लूँ।

यहाँ विवेचक अपने पिता से सम्बन्धित दो घटनाओं पर भी प्रकाश डालते हैं जो अहिंसा के अप्रतिम उदाहरण हैं-

एक दिन वे एवं उनके पिताजी अपने वाहन से घर पहुँचे। घर के गैरेज में वाहन को खड़ा करने हेतु विवेचक जी ने वहाँ बैठी एक गौ माता को उठाने का प्रयास किया तभी अचानक उनके पिता उन्हें रोकते हुए बोले कि गौ माता विश्राम कर रही हैं, अत: उनके विश्राम में विघ्न न डालते हुए, अपने वाहन को कहीं अन्य स्थान पर खड़ा कर दो।

पिता जी की ही दूसरी घटना, जिसमें उन्होंने क्रोधित हो विवेचक जी से कहा था कि ग्रीष्म ऋतु में अत्याधिक गर्मी में श्रमिक को घर के बाहर का कार्य न दे कर, घर के भीतर का कार्य करवाना चाहिए, ताकि वह तेज धूप से सुरक्षित रह सके।

इस प्रकार किसी मनुष्य के हृदय में एक निरीह जीव को लेकर इतना चिन्तन विचारणीय है एवम् यही अहिंसा का परमोत्कर्ष है।

17.15

अनुद्वेगकरं(म्) वाक्यं(म्), सत्यं(म्) प्रियहितं(ञ्) च यत्|
स्वाध्यायाभ्यसनं(ञ्) चैव, वाङ्मयं(न्) तप उच्यते||17.15||

जो किसी को भी उद्विग्न न करने वाला, सत्य और प्रिय तथा हितकारक भाषण है (वह) तथा स्वाध्याय और अभ्यास (नाम जप आदि) भी - यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! शरीर के साथ-साथ वाणी का भी तप करो।

अनुद्वेगता - यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।
उद्वेग - एक उदाहरण से समझते हैं-

एक पात्र में जल भरकर कुछ देर छोड़ देने के बाद वह शान्त हो जाता है, स्थिर हो जोता है। उसमें एक छोटा कङ्कड़ डालने से हलचल होती है, लहरें उत्पन्न होती हैं। जब हमारे कथन से किसी के हृदय में उथल-पुथल हो, हलचल हो, उसका मन बिगड़ जाए, वह उद्वेगता है। वह मेरी वाणी से किया गया उद्वेग है। मेरे कहने से किसी का मन बिगड़ गया। जीवन अनुद्वेगीय होना चाहिए।

सच्चे, भाने वाले, हितकर तथा अन्यों को क्षुब्ध न करने वाले वाक्य बोलना एवं वैदिक साहित्य का नियमित पारायण करना— यही वाणी की तपस्या है।

किसी शायर ने कहा है कि-
ऊपर वाले को सख्ती पसन्द नहीं जुबान में, इसीलिए तो हड्डी दी नहीं जुबान में।

एक बार जिह्वा का दाँतों से झगड़ा हो गया। दाँतों ने जिह्वा से कहा कि मैं तुम्हें चबाकर कुचल दूँगा। इस पर जिह्वा ने कहा कि तुम मुझे थोड़ा सा कष्ट दोगे पर ध्यान रखना, मैं कहीं ऐसा न बोल दूँ कि कोई मार दे और तुम बत्तीस के बत्तीस बाहर आ जाओ।

एक अन्य घटना है-

चीन में एक पिच्चासी वर्षीय वृद्ध साधु रहते थे। उनका अन्तिम समय निकट आया तो सभी शिष्यों ने उनके निकट आकर उनसे अन्तिम उपदेश देने का आग्रह किया। गुरु ने सबको एकदम निकट आने के लिए कहा और अपना मुँह खोलकर शिष्यों से पूछा कि अन्दर क्या दिख रहा है? शिष्यों को मुख के अन्दर जमा हुआ थूक, लार और सफेदी दिखी। गुरु ने पूछा कि क्या जीभ दिख रही हैं? शिष्यों ने कहा कि हाँ! गुरु ने फिर पूछा कि क्या दाँत दिख रहे हैं? शिष्यों ने कहा कि नहीं! एक भी नहीं। गुरु जी ने कहा- दाँत कठोर थे इसलिये सब गिर गए, परन्तु जिह्वा मुलायम थी, वह रह गई। जो मुलायम है, वह हमेशा साथ रहेगा और जो कठोर है, वह गिरा दिया जाएगा।

वाणी के तेज को भगवान् आदि शङ्कराचार्यजी और मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ प्रसङ्ग से समझते हैं -

भगवान् आदि शङ्कराचार्य जी और मण्डन मिश्र के मध्य सबसे बड़ा शास्त्रार्थ हुआ था। दोनों शास्त्रकारों के तर्क इतने प्रगाढ़ थे कि यह तय करना कठिन हो गया कि कौन श्रेष्ठ है? अति दुष्कर हो गया। जब सभी निर्णायकों को समझ नहीं आया कि विजेता कौन है तो मण्डन मिश्र की पत्नी भारती को निर्णायक बनाया गया। वे इतनी विद्वान थीं कि सभी ने उनको स्वीकार कर लिया। आदि शङ्कराचार्यजी ने भी उनको निर्णायक की भूमिका में स्वीकार कर लिया। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि जिससे मेरा शास्त्रार्थ हो रहा है उसकी पत्नी को ही न्यायाधीश बना दिया गया है।

भारती परम विदुषी स्त्री हैं। वे भी जान नहीं पाईं कि दोनों में सर्वश्रेष्ठ कौन है? दोनों के पास अद्‌भुत वाक् कौशल और अपरम्पार ज्ञान था। सही निर्णय करने के लिए भारती ने दोनों के गले में एक पुष्पमाला पहना दी और कहा कि शास्त्रार्थ करते-करते जिसकी माला पहले कुम्हला जाएगी, वह हार जाएगा। किसी को यह बात समझ नहीं आई। दोपहर बाद मण्डन मिश्र की माला के फूल कुम्हला गए और भगवान् शङ्कराचार्य जी के फूल वैसे के वैसे ही रहे। भगवान् शङ्कराचार्य जी विजयी घोषित किये गए।

भारती से पूछा गया कि इसके पीछे का क्या तर्क है? भारती ने तब इस अनुपम सोच का रहस्य समझाया, जिससे उनकी अप्रतिम बुद्धि का प्रमाण मिल गया। उन्होंने समझाया कि जिसकी वाणी में सत्य का जितना अधिक प्रयोग होगा, उसकी वाणी उतनी अधिक शीतल होगी और जिसकी वाणी में थोड़ा भी असत्य होगा उसकी वाणी में ऊष्मता बढ़ जाएगी। जिसकी शीतलता कम होगी, उसके शरीर का ताप बढ़ जाएगा, जिस कारण फूल कुम्हला जायेंगे। जिसका शरीर सत्य के कारण शीतल रहा, उसके फूल वैसे के वैसे ही ताजे रहे। यह सत्य को जाँचने का सटीक वैज्ञानिक उपाय था।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं -

तुलसी मीठे बचन ते सुख उपजत चहुँ ओर।
बसीकरन इक मंत्र है परिहरु बचन कठोर।।

सम्पूर्ण संसार को वश में करना है तो सम्पत्ति से नहीं कर सकते, धन से नहीं कर सकते किन्तु बोली से कर सकते हैं।

17.16

मनः(फ्) प्रसादः(स्) सौम्यत्वं(म्), मौनमात्मविनिग्रहः|
भावसंशुद्धिरित्येतत्, तपो मानसमुच्यते||17.16||

मन की प्रसन्नता, सौम्य भाव, मननशीलता, मन का निग्रह (और) भावों की भली भाँति शुद्धि - इस तरह यह मन-सम्बन्धी तप कहा जाता है।

विवेचन- मन: प्रसाद अर्थात् मन की प्रसन्नता। वेदाध्ययन द्वारा हम समझ सकते हैं कि चूँकि जीवत्मा, परमात्मा का ही अंश है तथा परमात्मा स्वयम् सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, अत: जीव का अन्त:करण यदि शुद्ध है, तब ऐसी स्थिति में ईश्वरीय तत्त्व की उपस्थिति स्वतः प्रतिलक्षित होती है तथा ऐसा जीव सदैव प्रसन्नचित रहते हुए, अपने चहुँ ओर भगवत् कृपा अनुभूत करता रहता है।

जब जीव स्वयम् की इन्द्रियों के वशीभूत हो भौतिक पदार्थों की कामना में सङ्लग्न हो चिन्तन करता हुआ, विषय भोगों की तृप्ति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहता है तथा उसकी यह इच्छायें कदापि लुप्त न हो क्षण-प्रतिक्षण वृद्धि को प्राप्त होती हैं, ऐसी स्थिति में जीव इच्छाओं की पूर्ति न होने पर कुपित होता है, उसका अन्त:करण दुःखी अर्थात् रोष से पूर्ण हो सदैव अप्रसन्न ही रहता है।

एक सन्त के मुख से कहा गया यह वचन जीवन सूत्र के समान है-

अपने मन का हुआ तो अच्छा है, नहीं हुआ तो भी अच्छा है क्योंकि वह उसके (ईश्वर) के मन का हुआ, वह अधिक अच्छा है। हम स्वयं का भला विचारने में असमर्थ हैं, जबकि परमात्मा हमारा कल्याण सदैव करते हैं।

सन्तोष, सरलता, गम्भीरता, आत्म-संयम एवं जीवन की शुद्धि- ये मन की तपस्याएँ हैं।

जीवन सदैव सौम्य होना चाहिए। मन में हिंसा, षडयन्त्र, कुटिलता नहीं होनी चाहिए। सहनशीलता व्यक्ति के स्वभाव में होनी आवश्यक है। वर्तमान समय में सहन शक्ति की कमी के कारण पति-पत्नी, सास-बहू, माँ-पुत्री के सम्बन्ध क्षतिग्रस्त हुए हैं। ईश्वर

ने दो कर्ण दिए है। जहाँ एक कान से किसी की बात सुन दूसरे कान से निकाली जा सकती है। परन्तु ऐसा नहीं हो रहा।

ॐ इग्नोराय नमः।।

एक ऐसा मन्त्र है जिसके प्रयोग से मनुष्य अपने इन कष्टों को समाप्त कर सकता है।

मनुष्यों में सौम्यता होनी आवश्यक है। कभी-कभी किसी व्यक्ति का मुख इतना कठोर होता है कि देखने पर प्रतीत होता है कि वह व्यक्ति क्रोधित है। बोली में कर्कशता, चाल, उठने-बैठने में असभ्यता के स्थान पर सदैव सौम्यता होनी आवश्यक है।

जीवन में उन समस्त विषयों एवं परिस्थितियों का मनन किया जाना चाहिए, जो हमें कुछ न कुछ शिक्षा प्रदान करती है। संयम जीव के उत्थान हेतु अत्यधिक आवश्यक है। हमें कैसे उठना, बैठना, बोलना है, यह देखना चाहिए। हमारी समस्त क्रियाएँ संयमित होनी चाहिए। मनुष्य का अपनी इन्द्रियों को संयमित करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

भाव-संशुद्धि- अर्थात् अन्तःकरण की शुद्धता। मन जप, भजन, पूजा में नहीं लगता, इसका कारण मन में उपस्थित कामना, वासना, कपट, षडयन्त्र आदि हैं। परमात्मा हमारे भीतर ही हैं परन्तु हम उन्हें देख नहीं सकते। कारण है, हमारे मन में उपस्थित कलुषित विचार, जिनके त्याग से हम स्वतः ही ईश्वरीय तत्त्व का अनुभव करने हेतु समर्थ हो सकेंगे।

हम दिनभर में इतना झूठ बोलते हैं कि हम जान ही नहीं पाते। कुछ असत्य हम कारणवश बोलते हैं, कुछ अकारण ही। अतः सर्वप्रथम अकारण बोले जाने वाले असत्य का त्याग करें तत्पश्चात किसी कारण हेतु बोले जाने वाले असत्य का। जिसके परिणामस्वरूप हमारा अन्तःकरण भी शुद्ध होगा। किसी के लिए, द्वेष, घृणा, प्रतिशोध का भाव होना सर्वथा निरर्थक है।

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न मिलया कोई।।

अर्थात् मुझसे बुरा कोई नहीं है।

17.17, 17.18, 17.19

श्रद्धया परया तप्तं(न्), तपस्तत्त्रिविधं(न्) नरैः|
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः(स्), सात्त्विकं(म्) परिचक्षते||17.17||
सत्कारमानपूजार्थं(न्), तपो दम्भेन चैव यत्|
क्रियते तदिह प्रोक्तं(म्), राजसं(ञ्) चलमध्रुवम्||17.18||
मूढग्राहेणात्मनो यत्, पीडया क्रियते तपः|
परस्योत्सादनार्थं(म्) वा, तत्तामसमुदाहृतम्||17.19||

परम श्रद्धा से युक्त फलेच्छा रहित मनुष्यों के द्वारा (जो) तीन प्रकार (शरीर, वाणी और मन) - का तप किया जाता है, उसको सात्त्विक कहते हैं।
जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिये तथा दिखाने के भाव से किया जाता है, वह इस लोक में अनिश्चित (और) नाशवान फल देने वाला (तप) राजस कहा गया है।
जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने को पीड़ा देकर अथवा दूसरों को कष्ट देने के लिये किया जाता है, वह (तप) तामस कहा गया है।

विवेचन- भौतिक लाभ की इच्छा न करने वाले तथा केवल परमेश्वर में प्रवृत्त मनुष्यों द्वारा दिव्य श्रद्धा से सपन्न यह तीन प्रकार की तपस्या सात्त्विक तपस्या कहलाती है।

जो तपस्या दम्भपूर्वक तथा सम्मान, सत्कार एवं पूजा करवाने हेतु सम्पन्न की जाती है, वह राजसिक तपस्या (रजोगुणी) कहलाती है। यह न तो स्थायी होती है न ही शाश्वत।

मूर्खतावश, आत्म-उत्पीड़न हेतु या अन्य जीवों को विनष्ट करने या हानि पहुँचाने हेतु जो तपस्या की जाती है, वह तामसिक तपस्या कहलाती है।

17.20

दातव्यमिति यद्दानं(न्), दीयतेऽनुपकारिणे|
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं(म्) सात्त्विकं(म्) स्मृतम्||17.20||

दान देना कर्तव्य है - ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर अनुपकारी को अर्थात् निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहा गया है।

विवेचन- जो दान कर्त्तव्य समझकर, किसी प्रत्युपकार की आशा से रहित हो, समुचित काल तथा स्थान में एवं योग्य व्यक्ति को दिया जाता है, वह सात्त्विक दान माना जाता है।

परमात्मा के इस संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं-

जो अन्य जीवों को दान देते हैं और वे जो दान लेते हैं।
जो धनी है उसे धन का दान करना चाहिए। जो ज्ञानी है, उसे ज्ञान का दान करना चाहिए।

जब हम नवीन वस्त्र क्रय करते हैं तब हमें पुराने वस्त्रों का त्याग करना भी आना चाहिए। लालसावश हम अपनी पुरानी वस्तुओं से अपनी अलमारियाँ भरते जाते हैं। हमें ऐसा न कर अपनी पुरानी वस्तुओं का दान करना चाहिए। उसके प्रतिफल में हमें किसी भी वस्तु या आदर, सम्मान की कामना नहीं करनी चाहिए।

गीता परिवार की तीन हजार कक्षाओं में बारह हजार सेवी कार्य करते हैं, वे कदापि आपसे प्रतिफल में धन्यवाद भी नहीं चाहते। उनके द्वारा की जा रही यह सेवा पूर्णत: नि:स्वार्थ है। यही सात्त्विक दान है।

17.21

यत्तु प्रत्युपकारार्थं(म्), फलमुद्दिश्य वा पुनः|
दीयते च परिक्लिष्टं(न्), तद्दानं(म्) राजसं(म्) स्मृतम्||17.21||

किन्तु जो (दान) क्लेशपूर्वक और प्रत्युपकार के लिये अथवा फल-प्राप्ति का उद्देश्य बनाकर फिर दिया जाता है, वह दान राजस कहा जाता है।

विवेचन- जो दान प्रत्युपकार की भावना से अथवा कर्मफल की इच्छा से युक्त होकर किया जाता है, वह रजोगुणी दान कहलाता है, अर्थात् फलाकाङ्क्षा के निहित होकर किया गया दान राजसिक कहलाता है।

प्रत्युपकारार्थम - कष्ट या अनिच्छा से दिया गया दान।

फलमुद्देश्य - मेरे दान के विनिमय में मुझे सम्मानित किया जाये या मेरी प्रसिद्धि हो, ऐसी भावना रखना।

राजसिक दान करने में कोई आपत्ति नहीं है। यह दान नहीं करने से श्रेष्ठ है।

17.22

अदेशकाले यद्दानम्, अपात्रेभ्यश्च दीयते|
असत्कृतमवज्ञातं(न्), तत्तामसमुदाहृतम्||17.22||

जो दान बिना सत्कार के तथा अवज्ञापूर्वक अयोग्य देश और काल में कुपात्र को दिया जाता है, वह (दान) तामस कहा गया है।

विवेचन- जो दान किसी अपवित्र स्थान में, अनुचित समय में, किसी अयोग्य व्यक्ति को या बिना समुचित ध्यान एवं आदर से दिया जाता है, वह तामसिक दान कहलाता है।

17.23

ॐ तत्सदिति निर्देशो, ब्रह्मणस्त्रिविधः(स्) स्मृतः|
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च, यज्ञाश्च विहिताः(फ्) पुरा||17.23||

ऊँ, तत् और सत् - इन तीन प्रकार के नामों से (जिस) परमात्मा का निर्देश (संकेत) किया गया है, उसी परमात्मा से सृष्टि के आदि में वेदों तथा ब्राह्मणों और यज्ञों की रचना हुई है।

विवेचन- सृष्टि के आदिकाल से ॐ-तत्-सत्, ये तीन शब्द परब्रह्म को सूचित करने हेतु प्रयुक्त किए जाते रहे हैं। इन तीनों सङ्केतों की अभिव्यक्तियाँ ब्राह्मणों द्वारा वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते समय तथा ब्रह्म को सन्तुष्ट करने हेतु यज्ञों के समय प्रयुक्त होती थीं।

17.24

तस्मादोमित्युदाहृत्य, यज्ञदानतपः(ख्) क्रियाः|
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः(स्), सततं(म्) ब्रह्मवादिनाम्||17.24||

इसलिये वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाले पुरुषों की शास्त्रविधि से नियत यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्मा के नाम का उच्चारण करके (ही) आरम्भ होती हैं।

विवेचन- अतएव योगीजन ब्रह्म की प्राप्ति हेतु शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ, दान तथा तप की समस्त क्रियाओं का शुभारम्भ सदैव ॐ से करते हैं।

17.25

तदित्यनभिसन्धाय, फलं(म्) यज्ञतपः(ख्) क्रियाः|
दानक्रियाश्च विविधाः(ख्), क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः||17.25||

तत्' नाम से कहे जाने वाले परमात्मा के लिये ही सब कुछ है - ऐसा मान कर मुक्ति चाहने वाले मनुष्यों द्वारा फल की इच्छा से रहित होकर अनेक प्रकार की यज्ञ और तप रूप क्रियाएँ तथा दान रूप क्रियाएँ की जाती हैं।

विवेचन- मनुष्य को चाहिए कि कर्मफल की इच्छा से रहित हो, विविध प्रकार के यज्ञ, तप तथा दान को तत् शब्द कह कर सम्पन्न करे। ऐसी दिव्य क्रियाओं का उद्देश्य भव-बन्धन से मुक्त होना है।

17.26, 17.27

सद्भावे साधुभावे च, सदित्येतत्प्रयुज्यते|

प्रशस्ते कर्मणि तथा, सच्छब्दः(फ्) पार्थ युज्यते||17.26||
यज्ञे तपसि दाने च, स्थितिः(स्) सदिति चोच्यते|
कर्म चैव तदर्थीयं(म्), सदित्येवाभिधीयते||17.27||

हे पार्थ ! सत्- ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्ता मात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है।
यज्ञ तथा तप और दान रूप क्रिया में (जो) स्थिति (निष्ठा) है, (वह) भी 'सत्' - ऐसे कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' - ऐसा ही कहा जाता है।

विवेचन- परम सत्य ही भक्तिमय यज्ञ का लक्ष्य है तथा उसे सत् शब्द से अभिहित किया जाता है। हे पृथापुत्र! ऐसे यज्ञ का सम्पन्नकर्ता भी सत् कहलाता है। जिस प्रकार यज्ञ, तप तथा दान के समस्त कर्म भी जो परमपुरुष को प्रसन्न करने हेतु सम्पन्न किए जाते हैं, 'सत्' हैं।

17.28

अश्रद्धया हुतं(न्) दत्तं(न्), तपस्तप्तं(ङ्) कृतं(ञ्) च यत्|
असदित्युच्यते पार्थ, न च तत्प्रेत्य नो इह||17.28||

हे पार्थ ! अश्रद्धा से किया हुआ हवन, दिया हुआ दान (और) तपा हुआ तप तथा (और भी) जो कुछ किया जाय, (वह सब) 'असत्' - ऐसा कहा जाता है। उसका (फल) न तो यहाँ होता है और न मरने के बाद ही होता है अर्थात् उसका कहीं भी सत् फल नहीं होता।

विवेचन- हे पार्थ! श्रद्धा से रहित यज्ञ, दान या तप के रूप में जो भी किया जाता है, वह नश्वर है। वह 'असत्' कहलाता है तथा इस जन्म एवं अगले जन्म दोनों में ही व्यर्थ जाता है।

शङ्कराचार्यजी ने कहा -
"एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति"।

हरी ॐ-तत्-सत् कहने से सब पूर्ण हो जाता है।

इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- निशा दीदी
प्रश्न- गीता जी का सरल भाषा में अर्थ कहाँ से पढ़ें?
उत्तर- गीता परिवार के निम्नलिखित लिङ्क पर जा कर आप सभी अध्यायों के विवेचन पढ़ सकते हैं। यहाँ पर आपको लर्न गीता कार्यक्रम में होने वाले प्रत्येक शनिवार और रविवार के विवेचन पी डी एफ स्वरूप में पढ़ने को उपलब्ध हैं।
Vivechan.learngeeta.com

प्रश्नकर्ता- शीला दीदी
प्रश्न- क्या जीवन में गुरु बनाना आवश्यक है?
उत्तर- जी हाँ, गुरु बनाना आवश्यक है। गुरु की खोज बहुत सावधानी से करनी पड़ती है।
गुरु बनाने के लिए निम्नलिखित चार बातों का ध्यान अवश्य रखिए-

1) वह स्वयंभू गुरु न हो।
2) वह सनातनी गुरु परम्परा से जुड़े हुए हों और अपने गुरु के द्वारा उन्हें दीक्षा देने हेतु निर्देशित किया गया हो।
3) शास्त्रों का अध्ययन और अध्यापन करने वाले होने चाहिए।
4) स्वयं की पूजा में न लगाकर श्रीभगवान् की पूजा में लगाने वाले होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता- गोपेश्वर भैया
प्रश्न- आपने कम से कम पाँच देवताओं की पूजा करने की बात बताई, किन्तु गीता जी में श्रीभगवान् ने कहा है कि "सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज"। तो इसका क्या अर्थ है?
उत्तर- श्रीभगवान् ने किसी की पूजा करने से मना नहीं किया है।
"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" का अर्थ है, "सभी धर्मों को त्याग कर मेरी शरण में आ जाओ।" धर्म और पूजा करना एक बात नहीं है।

प्रश्नकर्ता- जयश्री दीदी
प्रश्न- जब मन में नकारात्मक विचार आएँ तो क्या करें?
उत्तर- जब नकारात्मक विचार आएँ तो श्रीभगवान् की कृपा का अनुभव करें कि श्रीभगवान् ने हमें कितना कुछ प्रदान किया हुआ है। जो कुछ नहीं मिला उस पर ध्यान न लगा कर जो मिला है उसके लिए ईश्वर का धन्यवाद करें।

मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह: |
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते || 16||

यही मन का तप है।

प्रश्नकर्ता- मानस भैया
प्रश्न- कठोर और अप्रिय सत्य को कहना चाहिए या नहीं?
उत्तर-

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् , न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।
प्रियं च नानृतम् ब्रूयात् , एष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोलना चाहिये, प्रिय बोलना चाहिये, परन्तु अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिये। यह शास्त्राज्ञा है।

गीता जी में श्रीभगवान् ने कहा है-
सत्यं प्रियहितं च यत्।
अर्थात् ऐसा सत्य बोलो जो प्रिय और हितकारी हो।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(म्) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'श्रद्धात्रयविभागयोग' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||